कल्याणी

धनवाद रिक्सों का शहर है।जितने रिक्से धनवाद मे टाने जाते हैं,शायद ही किसी दूसरे शहर मे टाने जाते होंगे।वसें,टेम्पोस,टेक्सियॉ या दूसरी सवारियॉ इन पर आज तक हावी न हो पाई है।
आज भी इन तमाम वर्षो के बाद न सिर्फ मुझे कई रिक्सेवालों का चेहरा याद है,बल्कि उनके नाम भी याद है।इन्ही मे से एक छोटू हुआ करता था।पता नही कैसे ये नरकंकाल रिक्सा टान पाता था!
उसके बॉये हॉथ के बीच की उँगलियों मे फॅसी बिड़ी बूझती ही न थी।शाम को थका हारा वो अपना रिक्सा झरनापाड़ा की देशी भट्ठी की ओर मोड़ देता था और फिर नशे मे धुत्त अपना रिक्सा टानता रात के दस ग्यारह बजे वापस घर लौट आता था।
चालीस से ऊपर उसकी उम्र हो चली थी।तीन करकट बीमारियॉ भी उसके पीछे साये की तरह चिपटी हुई थीं।उसके दोनो हॉथो की उँगलियॉ ही नही,बल्कि केहूने तक दोनो हॉथ सफेद हो चले थे,पर ये कोई आक्रामक कोढ न था।ये कोई चर्मरोग था।इस बीमारी से छोटू को कोई खास परेशानी नही थी।परन्तु उसकी दूसरी दो बीमारियॉ धीरे धीरे उसके पेशे के लिए घातक बनती चली जा रही थीं।उसके दॉयें पैर का पिलपॉव और उसका हाइड्रोशिल किसी भी रोक थाम के बाहर का था।फिर छोटू अपना इलाज भी कहॉ से करवाता!उस पर चार जनों के एक परिवार का बोझ भी तो था।
उसकी धर्मपत्नी माईनिंग ऑफिस के परिसर मे किसी एक ऑफिसर के घर झाड़ू बुहारू का काम करती थी और उन्ही के अहाते के एक कोने मे बने एक कमरे के सर्वेन्ट क्वार्टर मे छोटू का पूरा परिवार रहता था।उसकी बड़ी बेटी अपने चौदहवें या पन्द्रहवें वर्ष मे ही धनबाद के नामवर कामुकों के जुवान पर चढ चुकी थी।
ये सर्वेन्ट क्वार्टर पुलीस लाईन रोड से लगा हुआ था।सामने एक नीची पर पक्की दीवार थी और एक जगह इस दीवार के दोनो तरफ पक्की सीढियॉ भी बनी हुई थी।इन्ही सीढियों से छोटू का परिवार छोटी मोटी खरीददारियों के लिए पुलीस लाईन या हीरापुर आता जाता था।क्वार्टर के सामने लगे पुटुस की झाड़ को साफ सूफ करके छोटू ने एक छोटा सा ऑगन बना रखा था,जहॉ न सिर्फ सुबह और शाम का खाना बनता था ,बल्कि गर्मी के दिनो मे छोटू का पूरा परिवार भी इसी ऑगन मे सोता था।
शाम हुई नही कि छोटू की बेटियॉ खाटें लगाने लगती थीं।एक लाईन से पॉच बॅसहटियॉ बिछ जाती थी,जिन पर हरे चारखाने की चादरें बिछी होती थीं।एक कोने मे एक बाल्टी के चूल्हे पर छोटू की बीवी कुछ रॉधने लग जाती थी।बगल मे ही उसकी बड़ी बेटी सील लोढे पर या तो मसाला पीसने बैठ जाती थी या एक थाली मे सब्जी ले कर अपने बिस्तर पर उन्हे काटने बैठ जाती थी।छोटू की और दो छोटी बेटियॉ अपने बिस्तरों पर बैठे खाना पकने का इन्तजार करती होती थी।ये दोनो फ्रॉक पहनती थी,पर बड़ी बेटी साड़ी पहनती थी।वो अपना ऑचल कमर मे खोसे रहती थी।
पुलीस लाईन की सड़क पर आते जाते लोगों को छोटू की बीवी और उसकी बड़ी बेटी की बस पीठ ही देखने को मिलती थी।इन दोनो मे कोई भी सड़क की तरफ अपना रूख ही नही करता था।हॉ लोगों को एक और चीज देखने को मिल जाती थी,इनके घने लम्बे काले बाल,जो इनकी पीठो पर नागिनो की तरह लहराते और बलखाते रहते रहते थे।
पौ फटी नही कि छोटू की बीवी अपनी बड़ी बेटी के संग चूल्हे पर जा बैठती थी।उसकी दूसरी बेटियॉ अपनी बॅसहटियों मे चादरें ओढे सोई रहती थी।वो खुद भी नशे मे धुत्त अपनी बॅसहटी पर सोया रहता था।उसका नशा नौ बजे के आसपास सूर्य देवता ही तोड़ पाते थे।फटाफट वो अपने गॉठ का सारा पैसा अपने बॅसहटी पर ढीला करके अपनी टायरों की चप्पले ढूँढने मे लग जाता था।
ठीक दस बजे ओल्ड हॉस्टल के सामने पंजाव मेस का वावर्ची तिरपुरारी स्टूडेन्टो को नाश्ता करवा कर अपने झोले थामे खड़ा हो जाता था।उसे छोटू की देर सवेर बिल्कुल पसन्द न थी।कई बार वो छोटू को धमकी भी दे चुका था।तिरपुरारी को देखते ही छोटू अपने दोनो पॉव जोड़ कर उसे मिलिट्री के सिपाही की तरह सैल्यूट ठोंकता था जिसे देख कर तिरपुरारी ही नही,बल्कि आसपास खड़े दूसरे लोग भी हॅसने लगते थे।
छोटू ही उसे रोज के सौदे के लिए हीरापुर हाट ले जाता था।तिरपुरारी से महीने के अन्त मे उसे नगद पच्चीस रूपये मिलते थे और साथ मे रोजाना मुफ्त दो वक्त का खाना और दसों कप चायें भी।बंगाल मेस का वावर्ची नूपूर दा भी छोटू का पक्का गाहक था।छोटू उसे सप्ताह मे तीन बार हटिया ले जाया करता था।नूपूर दा से भी उसे महीने के अन्त मे नगद पन्द्रह रूपये मिलते थे।
नूपूर दा अपने मेस मे सप्ताह मे तीन दिन दोपहर के खाने पर माछ रॉधते ही रॉधते थे।इन तीनो दिनो छोटू पंजाव मेस की ओर झॉकने तक न जाता था।
जब उसके पास समय होता था,तव वो अपना रिक्सा धईया की ओर मोड़ लेता था।वहीं एक झाड़ झूड़ से घिरी बसाती पॅकीली पोखरी के आसपास कहीं उसका शौचालय होता था।उसका नहाना धोना कुल्ली कचारना सब कुछ मेसों के सामने लगे बगानों के नलके पर ही होता था।
स्टूडेन्टस उसके रिक्से पर दो वजहों से नही बैठते थेःजितनी जर्जर हालत छोटू की थी,उससे भी जर्जर हालत उसके रिक्से की थी।फटी सीट,टाल पहिये,ढीली ब्रेके फिर भी ये उसका निजी रिक्सा था।आज तक न तो वो किसी को धक्का मारा था और न ही किसी से धक्का खाया था।
उसके पिलपॉव,चरक और हाइड्रोशील ने उसे एक अलग पहचान तो दे ही रखी थी,पर अगर उसके पास ये तीनो चीजें न भी होती,तव भी उसकी अपनी एक अलग पहचान होती।अपनी सीट पर बैठा हैन्डल का भोंपू बजा बजा कर रास्ते भर बस वो एक ही बिना सर और पैर के गीत अलग अलग लयों मे गाया करता थाःमार दूँगी बस लाल बस नीली बस मार दूँगी बस।हिन्दी के नाम पर बस उसे इतना ही आता था।अंग्रेजी के नाम पर उसे यस सर नो सर और टू रूपीस कहना आता था जो हीरापुर हटिये तक का किराया था।बाकी बातें वो बंगाली मे ही करता था।
मूछें भी वो राणा प्रताप की तरह रखे हुए था और अपने सीट पर भी वो वैसे ही ॲकड़ कर बैठता था जैसे राणा प्रताप अपने चेतक पर।
छोटू को भला कैसे अनदेखा किया जा सकता था!
तिरपुरारी और नूपूर दा के अलावे दूसरे मेसों के नौकर या वावर्ची ही उसके गाहक थे।
बिड़ी और रोजाना शाम को एक बोतल ठर्रे के अलावे उसके पास न कोई तीसरा व्यसन था और न खर्च।अपनी शेष कमाई वो अपनी पत्नी के हॉथ पर धर देता था।कपड़ा लत्ता,खाना पीना,पूजा त्यौहार सब कुछ उसके पत्नी के हॉथों मे था जिसे वो बड़ी कुशलता से सम्हाले हुए थी।परिवार मे दो जून का खाना था,पहनने ओढने के लिए कपड़ा लत्ता था,सर के ऊपर छत थी।पुलीस लाईन के ठीक बगल मे रहने की वजह

से एक तरह की सुरक्षा भी इस परिवार के पास थी। फिर ये ऑफिसर बन्गले के अहाते मे भी तो रहते थे।
धनबाद के मवालियों की नजर छोटू की बीबी पर तो थी ही, उसकी बेटियों पर ज्यादे थी। दूसरी बेटी भी अब तेरह वर्ष की हो चली थी। वो भी अब साड़ी पहनने लगी थी। सबसे छोटी यही कोई सात आठ साल की रही होगी।
एक दिन छोटू तिरपुरारी को हीरापुर हटिया से खरीददारी करवा कर वापस ला रहा था। इन्डियन स्कूल ऑफ माईन्स के मेन गेट से हो कर वो अहाते मे आया ही था कि अचानक डीः पीः झा के बन्गले के सामने उसकी खॉसी उभरी। उसके हर खंखार मे खून आने लगा। वो अपनी सीट से चुपचाप उतरा और सड़क के किनारे फूटपाथ पर जा कर लेट गया।
मेन गेट पर सवारियों के इन्तजार मे कई रिक्सेवाले खड़े थे जिनमे से एक गनि नाम का रिक्सावाला भी था। वही छोटू को अपने रिक्से पर बिठा कर सदर अस्पताल भागा। तिरपुरारी छोटू की मॉ बहन करके एक दूसरा रिक्सा पकड़ा। छोटू का रिक्सा ठेल कर कपूर साहब के अहाते से लगे एक जिलेबी पेंड़ के नीचे लगा दिया गया।
छोटू को टी बी हो गई थी। सदर अस्पताल मे भी कौन सा इलाज होना था। महीनो वो टी बी वार्ड के फ्लोर पर लगाए बिना बिस्तर के एक मोर्ची ले वेड पर पड़ा सड़ता रहा फिर उसे मरने के लिए रिहा कर दिया गया।
उसकी बीवी ने दो तीन दूसरे घरों का काम ले लिया। उसकी वेटियॉ उसकी खटिया का गोड़ अहर्निश थामे रहती थी। परिवार मे भूखों मरने की नौबत तो न आई, पर पौष्टिक खाना या फल फूल उसकी पत्नी कहॉ से पैदा करती!छोटू का स्वास्थ्य दिन व दिन गिरता ही चला गया, पर वो बिड़ी पीना अपने अन्तिम दिन तक न छोड़ा। छोटू के साथ न सिर्फ उसका परिवार, वल्कि पूरा धनवाद भी उसके मरने के दिन गिन रहा था।
छोटू ने अपने मरने का दिन और समय भी बड़ा गलत चुना।
तीन दिनो लगातार एक टिप टिप करने वाली बरसात ने धनवाद के नाक मे दम कर रखा था। रूकने का नाम ही न ले रही थी। पूरा परिवार तीन दिनो से एक छोटे से कमरे मे समाया हुआ था। तीसरे दिन रात के ग्यारह बजे इस कमरे से आने वाली आर्त्तनाद कई पान बिड़ी वाली गुमटियों तक पहुँची। मदद के लिए कोई समीप न आया। सुबह तक छोटू का पूरा परिवार राग पा पाकर रोता कलपता रहा। दूसरे दिन सरकारी खर्चे पर एक काली दबी पिचकी वैन स्वर्गवास मेल छोटू की लाश दामोदरपुर के डोमों को सौंप आई जिसे उन्होने बची खूची लकड़ियों और राखों से ढ़ंक तोप दिया।
शुरू के दिनो मे छोटू की पत्नी अपनी बेटियों के संग माईनिंग ऑफिस के परिसर मे ही वर्त्तने मॉजती रही। पर दो चार घरों के काम से इनका गुजारा नही हो पा रहा था। परिसर के वाहर सवसे पहले छोटू की सवसे बड़ी बेटी ने अपना कदम रखा। इन्डियन स्कूल ऑफ माईन्स के अहाते मे उसे पहला काम हमारे घर पर मिला, जहॉ मेरे सहीत दूसरे तीन भाई भी जवान हो चले थे। फिर उसे दो हॉस्टलो से गुजर कर हमारे घर आना पड़ता था, जहॉ नही भी तो कम से कम छह सौ स्टूडेन्टस तो रहते ही होंगे।
जब वो पहले दिन हमारे घर काम पर आई तो उसने एक सफेद रंग और काले मोटे वार्डरों वाली साड़ी सीधे पल्ले मे पहने हुए थी। एक बन्द गले की सफेद ब्लाउज, एक काली चप्पल, पीछे किए बालों को उसने एक लाल रंग के रिवन से बॉध रखा था। अपना ऑचल वो शायद हमेशा ही अपने कमरे मे खोंसे रहती थी।
बड़ी बड़ी ऑखें, तीखे नाक नक्श, नितम्ब तक लहराते काले वाल, तम्बई रंग, ऊँची कद और ऊपर से कसी देहयष्टि की इस मालकिन बंगालन का नाम कल्याणी था।
दिखने दिखाने को वस हम उसकी पीठ ही देख पाते थे और वो भी तब जब वो मसाला पीसने बैठती थी या फिर तब जब उसे झाड़ू बुहारू के लिए झुकना पड़ता था।
वो अपनी नजरें सिर्फ मॉ के सामने ही उठाती थी या तव जब वो उनसे काम के वारे मे कुछ पूछने जाती थी। कभीं कभार वो हमारे कमरों मे भी चाय देने आती थी। चुपचाप अपने ऑचल से हमारे टेवल की धूल साफ करके वो वहॉ चाय का कप रख जाती थी। हमारी ओर तो वो ताकती तक न थी।
छुट्टियों मे वो हमारी मॉ से हमारी ठीक ठाक चौकीदारी करवाती थी।
पता नही कैम्पस के किस स्टूडेन्ट की नज़र सबसे पहले उस पर पड़ी!एक सप्ताह भी न गुजरा था कि ठीक सुबह के सात बजे और दोपहर के दो बजे सारे के सारे लड़के अपनी खिड़कियों पर आ धमकते थे। यही समय होता था कल्याणी का हमारे घर पर आने का। ओल्ड हॉस्टल के मोड़ से ले कर एल ब्लॉक हॉस्टल के पास वाली पुलिया तक न सिर्फ सिटियॉ, वल्कि भद्दे से भद्दे आमंत्रण निमंत्रण उसका पीछा करते होते थे। बिना ठंढी आहें भरे उसके बगल से न गुजरने की सवने कसम खा रखी थी। उन्नीस वर्ष की कल्याणी की गदराई जवानी ने आधे धनवाद का मस्तक रौंद रखा था। लोगों का वश चलता तो वो उसे कच्चा चवा डालते।
तीन वर्षो तक उसने हमारे घर का काम सम्हाला।
फिर पता नही किन कारणों से ये पूरा परिवार बंगाल वापस चला गया। कल्याणी के एक मामा बंगाल के किसी एक छोटे से गॉव मे रहते थे। थोड़ी बहुत जमीन जो उनके पास थी, उसमे वो चावल उगाते थे और साथ साथ पान की भी खेती करते थे।
धनवाद को ठीक ठाक ललचा कलपा कर कल्याणी अपनी मॉ और वहनो के संग मालदह अपने मामा के घर चली गई। धनवाद फिर से ऐसे ही गरीब और बेवस परिवारों मे पैदा हुई वच्चियों के जवान होने के इन्तजार मे खो गया।
जब तब मुझे भी कल्याणी की याद आती थी। अब तो वो निश्चित किसी बंगाली बाबू की व्याहता होगी!एक दो बच्चों की मॉ भी बन गई होगी!अपने वरामदे मे अपने बाल नितम्ब पर फैलाए मांग मे आधा किलो सिन्दूर झोंके मसाला पीस रही होगी, रोहू माछ रॉधने के लिए।
छह सात वर्ष तो गुजर ही गए होंगे कल्याणी को धनवाद छोड़े।
जिलेबी पेंड़ के नीचे छोटू का रिक्सा आज तक खड़ा था, पर विना पहियों के। उसकी घंटी और भोंपू तो कव की खोली जा चुकी थी। फिर पुलिस लाईन का एक मोची उसकी सीट निकाल ले गया। पहिये एक फेरी वाला अपनी हॉथगाड़ी मे फिट कर लिया।
धनवाद से बंगाल की सीमा काफी दूर नही है। बंगाल की सीमा शुरू हुई नही कि एक गॉव आता है लक्षीपुरढाल, जिसे लोगबाग एल पी डी भी कहते हैं। मै हायर सकेन्ड्री के दिनो मे एक बार वहॉ अपने एक दोस्त अर्जुन के साथ जा चुका था।
ये झुग्गियों और लम्बे लम्बे एस्वेस्टसो वाले वैरकों से भरा गॉव है, जहॉ की सारी की सारी औरतें वैश्यावृति करती है। इनके मर्द या तो अपने

जनानियों की दलाली करते हैं या फिर दूसरे शहरों से भाग कर या भगा कर लाई औरतों से सुरक्षा के नाम पर कमीशन तसीलते हैं। आसनसोल के थाने पर उनकी तय रकम पहुँचा दी जाती है। फिर यहाँ छापे वापे नही पड़ते। यहाँ की कीमते भी बड़ी वाजिब है। मोल भाव करने पर दो टाके पर भी काम निपट जाता है।
ऐसे ही गर्मी की कोई सुबह थी। मै और अर्जुन शाहजहाँ स्टेशन पर उतर कर एक रिक्सा पकड़े और उसे मुँहमाँगा किराया दे कर लक्षीपुरढाल आए। सुबह के यही कोई पाँच बज रहे थे। पूरा गाँव सोया हुआ था और वो भी अपनी झुग्गियों के सामने खटिया डाले। सबके बदन पर फटी चादरें और लिथड़े फैले हुए थे। यहाँ तक कि इस गाँव के अवारा कुत्ते भी सो रहे थे। और आखिर क्यों नही सोते!गई रात तक रोजाना ही इनका न जाने कितने अपरिचितों से सामना होता है और उनके अभिनंदन मे गला फाड़ कर भूँकना होता है।
कई औरतों के पाँव चादर या लिथड़ों से बाहर झाँक रहे थे। पैरों की उँगलियों के नाखून गाढे लाल रंग मे रंगे हुए थे। कई पाँवो की बिछिया तक नजर आ रही थी। इनमे से किसी को भी दो चार टाका के लिए जगाया जा सकता था।
एक खास बात जो मैने देखी, वो ये थी कि अब तक मुझे एक भी ऐसा पाँव नज़र न आया था जिस पर कोई कच्चा या पका फोड़ा न हो। हम आधे गाँव तक टहल आए थे। जिस रास्ते पर हम बढे जा रहे थे, वो कोई रास्ता न था, बल्कि लोगों का आँगन था, जिससे लगा एक चौंड़ा सा पनाला भी बह रहा था जिसकी बदबू नाक पर रूमाल रखने के बावजूद भी असह्य थी और यहाँ की जनता निर्द्वन्द सो रही थी। कई औरतों के बगल मे बच्चे भी सोते नजर आए।
बड़े भारी मन के साथ कम से कम मै वापस धनबाद लौटा। अर्जुन के मन की मै नही जानता।
छुट्टियों मे मेरा ज्यादे समय धनबाद मे झरिया के एक दोस्त के संग गुजरता था जिसे उसके अपने सपनों ने एक हद तक तोड़ रखा था और वो हर वो सीमा तोड़े जा रहा था जो उसे अपने सामने दिखता था।
एक दिन वो नशे मे धुत्त रात के दस बजे हमारे घर आ पहुँचा। मेरे कमरे का एक दरवाजा बगल की तरफ से बगान मे भी खुलता था। धीरे से मेन गेट लाँघ कर वो मेरे कमरे तक आ पहुँचा और मेरे दरवाजे पर दस्तक दी। मै अभीं तक सोया न था। वो मुझसे गोविन्दपुर चलने की जिद़ करने लग पड़ा। पता नही माँ से कौन सा बहाना बना कर मै उसके स्कूटर की पिछली सीट पर जा बैठा।
रात के सन्नाटे मे हमारी स्कूटर गोविन्दपुर की ओर दौड़ पड़ी। रास्ते भर मै अपने दोस्त से ये पूछ पूछ कर थक गया कि आखिर वो चाहता क्या है!कहाँ लिए जा रहा है मुझे!पर उसने अपनी जुबान ही सिल रखी थी।
हम गोविन्दपुर के एक ढाबे मे जा पहुँचे। इस ढाबे का नाम हिन्दुहोटल था, जो पूरे धनबाद मे अपने मुर्गमूस्सलम और नान के लिए मशहूर था। होटल के एक कैबिन मे हमारा इन्तजार गोविन्दपुर का ठगना मुखिया और गोविन्दपुर थाने के थानेदार कर रहे थे और वो भी वर्दी मे। टेबल पर एक रम की बोतल खुली पड़ी थी और दोनो मुर्गी की टांग चबाए जा रहे थे। सबसे परिचय हुआ। हमारे लिए भी बेयरा दो खाली ग्लास लाया और साथ मे मुर्गमूस्सलम की दो प्लेटें भी।
तकरीबन बारह बजे हम नशे मे धुत्त एक खुली जीप मे जा बैठे। उन दिनो सड़को पर लगे बिजली के लाईनो की बड़ी चोरियाँ होती थी जो ताम्बे की होती थीं। थानेदार साहब को दौरे पर निकलना था। जीप मे बैठने से पहले वो अपनी वर्दी उतार कर सिविल कपड़े पहने, पर सिक्सर अपने कमर मे खोंसना न भूले। वो अपनी वर्दी सहेज चपोत कर बगल वाली सीट पर रख कर स्टेयरिंग सम्हाले। मै अपने दोस्त के साथ पीछे वाली सीट पर जा बैठा और मुखिया हमारे सामने।
जीप बंगाल प्रान्त की सीमा की ओर दौड़ पड़ी। मेरा अनुमान गलत न था। ये कोई दौरा वौरा न था। लक्षीपुरढाल को रगड़ कर जाते हुए हाईवे पर हमारी जीप रूकी। अब हम गाँव मे थे। चारो तरफ धुप्प अँधेरा छाया हुआ था। इस बार शायद मै इस गाँव मे दूसरी दिशा से आया था। झुग्गियाँ तो नजर नही आ रही थीं, सिर्फ बैरक नजर आ रहे थे।
गिरते सम्हलते अँधेरे को चीरते हम आगे बढे जा रहे थे। अचानक हमे एक गुमटी नजर आई जहाँ एक गैस की बत्ती जल रही थी। गुमटी के सामने नही भी तो पन्द्रह बीस औरतें खड़ी पत्तलों मे चाऊल घूँघरी, चाऊल मांसो और चाऊल माछ खाए जा रही थीं। कुछ के हाँथो मे चाय से भरी काँच की ग्लासें थी। हमे पास आते देख कर सबके कौर बड़े हो गए। फटाफट पत्तल चाट चूट कर या अपनी चाय खत्म फेंक कर सारी की सारी हमारी सेवा मे तैयार थी।
गैस की बत्ती मे जिन औरतों को मै देख रहा था उनमे से शायद ही किसी की उम्र पच्चीस से ऊपर की रही होगी और इनमे से शायद ही ऐसी कोई रही होगी जिसके दाहिने बाँह मे मनौती का लाल धागा न बँधा हो।
दो सेकेन्ड भी न लगा होगा। मेरे दोस्त अपनी मनपसन्द आम्रपालियों के संग अन्धेरे मे कहीं सरक लिए।
मै गुमटी वाले से एक ग्लास अच्छी तरह धोकर चाय देने को कहा।
किस्मत से मुझे उतनी अच्छी बंगाली नही आती थी फिर भी गुमटी के सामने खड़ी औरतों ने मुझे क्या क्या कहा वो मै समझ सकता था। मेरे लिए तो कईयों ने अपनी कीमतें भी गिरा दी थी। अच्छी मुसीबत मे मेरा दोस्त मुझे डाल गया था। तभी एक लम्बे कद की औरत अपने बाल खोले अपने किसी गाहक को निपटा कर ठीक सामने वाले बैरक से बाहर निकली और गुमटी की ओर बढी। मुझे उसे पहचानने मे एक पल भी न लगा। वो कल्याणी थी।
अभीं तक उसकी नजर मुझ पर नही पड़ी थी। गुमटी वाले से उसने भी चाऊल और मांसो खरीदा। बाँये हाँथ मे पत्तल थामे दाँये हाँथ से उसने चपड़ चपड़ खाना शुरू कर दिया। मै चुपचाप उसे खाते देखता रहा। बदलने को तो वो बिल्कुल ही नही बदली थी। वो बोड़ो झाल बोड़ो झाल कह कह के खाती रही। खाने के बाद पास ही रखे पानी से भरे एक जग से उसने अपना हाँथ धोया फिर अँजूरी से पानी पीया फिर अपनी कमर मे खोंसा आँचल बाहर निकाल कर अपने हाँथ और मुँह पोछे। जब वो गुमटी के सामने खड़ी औरतों को ये कहकेःएई आमार ओन्तिम खेप, जाने को हुई, तब मैने उसका नाम ले कर पुकारा।
अपना नाम सुन कर वो चौंकी नही। वो शायद यही सोची होगी कि मै उसका कोई परमानेन्ट गाहक रहा होऊँगा।
फिर भी वो मेरे पास आई और कहीःआज बहुत खेंपे लगाई। बदन टूट रहा है। अब मै सोने जा रही हूँ। किसी दूसरी के साथ चले जाओ। पर जब मैने बीस टाका कहा तो वो पलटी, पर मुझे पहचान नही पाई। मेरा हाँथ थामे अपने कमरे मे लिवा गई।
इस कमरे मे एक भी खिड़की न थी। एक कोने मे ढिबरी जल रही थी जिसके प्रकाश मे मै देख रहा था कि शायद ही दीवार का कोई हिस्सा बचा

होगा. जहॉ किसी देवता या देवी की तश्वीर न सटी हो। ठीक सामने एक ऊॅचा सा बिस्तर था जिस पर रखे दो तकिये और सलवटों से भरी एक भागलपुरी चादर मुझे दूर से ही गन्दी लगी। बिस्तर के बगल मे एक खूॅटी थी। मै अपना जैकेट उतार कर खूॅटी पर लटकाने ही जा रहा था कि कमरे के एक कोने मे बने एक छोटे से घेरे मे कल्याणी पेशाब करने जा बैठी। पेशाब करके वो ये कहते हुए पैसे के लिए मेरे सामने हॉथ पसार दीःये हमारे लिए गर्भ निरोध है। काम से पहले और काम के बाद।
बीस टाका अपनी चोली मे ठूॅस कर वो बिस्तर पर जा लेटी और अविलम्ब अपने नितम्ब उठा कर अपनी साड़ी और साये को ऊपर तक खींच लीःअब आओ जल्दी से अपना काम निपटाओ। मुझे नींद आ रही है. ये कहके उसने अपने दोनो बॉहो की कैंची बना कर अपना चेहरा ढ़क लिया।
मै हतप्र्रभ खड़ा उसे देखता ही रहा।
ःदेखो मेरा ज्यादा समय मत लो। मै तुम्हारी कोई कहानी सुनने से रही। मेरे पास कहानी और शायरी भी लिखने वाले आते हैं। दस बीस टाका पकड़ा कर मेरा और अपना समय जाया करते हैं।
सहज विश्वास ही न हो पा रहा था कि ये धनबाद वाली शर्मीली कल्याणी है
ःइससे ज्यादे मै अपने को नंगा नही करूॅगी। बदन का ऊपरी हिस्सा तो किसी भी क़ीमत पर नही।
बंगाली के दो चार अक्षर जो मुझे आते थे उन्ही को जोड़ जाड़ कर मैने उससे पूछा
ःआमि सोचा जोब तूमि धोनबाद छोड़ा भालो जीवोन पावी। एय तूमि की कोरछे!
कल्याणी ने फटाफट अपनी साड़ी नीचे खीची और उठंग कर बैठ गई
ःतुम धनबाद से मुझे जानते हो!
ःहॉ
ःकैसे!कहॉ से!
ःतुम छोटू की बड़ी बेटी हो न!
ःहॉ मै छोटू की ही बड़ी बेटी हूॅ पर तुम मुझे कैसे जानते हो!
ःतुमने हमारे यहॉ तीन वर्ष काम किया हैः
ःतुम मायजी के बेटे तो नही हो!
ःहॉ!आमि दूसरा बेटाःमै उनका दूसरा बेटा हूॅः
ओ मॉ! कहके कल्याणी ने दोनो हॉथों से अपना चेहरा छुपा लिया।
रोने गाने के नाम पर अब उसके पास ऑसू का एक भी बूॅद शेष न बचा था फिर लक्षीपुरढाल मे ऑसुओं का क्या काम था!
चलने से पहले मैने बस उससे इतना ही कहाः
ःतुमने धनबाद क्यों छोड़ा!इन कामों के लिए धनबाद मे भी तो पैसा था।
ःक्या करूॅ दादा!इस पेशे मे अपनी मर्जी से कोई नही आता। हम सभी बहनो को बेचने के खाातिर मामा ने हमसे धनबाद छुड़वाया। मॉ को नौकरानी बना कर अभीं तक साथ मे रखा है।
ःतुम्हारी दूसरी बहने भी यहीं है!ः
ःयहॉ तो नही हैं। शायद कहीं और होंगी।
मैने अपना जैकेट पहना और चलने को हुआ। कल्याणी ने अपने ब्लाउज मे खोंसा मेरा बीस टाका फटाफट निकाल कर मेरे जेब मे डाल दियाःदादा आप का पैसा मुझे फलेगा नही। मायजी का पॉव मेरी तरफ से छू लीजिएगा. पर उन्हे मेरे बारे मे कुछ भी न कहियेगा।
एक और बातःइस तरह की बस्तियों मे फिर कभीं कदम न रखिएगा। यहॉ की औरतों के पास सिवाय बीमारी बॉटने के और कुछ नही है। मै भी बीमार हूॅ।
कल्याणी का आशीष लेकर मै गुमटी पर पहुॅचा. जहॉ मेरे दोस्त मेरा इन्तजार कर रहे थे। मुझे देखते ही मुखिया छूट कर बोलाःजब मुझे पता चला कि तुम किसके साथ गए हो. तभी मै तुम्हारे दोस्त को बोलाःअब बैठो यहॉ। कल दोपहर से पहले तुम्हारा दोस्त आने से रहा। गजब का जिनिस है कोलानी। कितना खेप लगाया!जीप तक चोल पाएगा या स्ट्रेचर मोंगवाना पोड़ेगा!
इस मुखिये के अट्टाहास को सुन कर कई सोये कुत्ते एक साथ जग पड़े और समवेत भोंकने लगे।

ःइस कहानी में टूटे फूटे बंगाली शब्दों का हिन्दी मे रूपान्तर मैने जरूरी नही समझा। दरअसल इन्ही टूटे फूटे बंगाली शब्दों के सहारे आज भी मै कल्याणी को याद करता हूॅ। देखा दिखाया धूमिल हो जाता है। कहा कहाया आजीवन जीवन्त रहता है। आशा है कि आप मुझे क्षमा करेंगेंः
सविनय
प्र्रमोद कुमार सिंह

प्र्रमोद कुमार सिंह